ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3584994

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

Arts

चित्रकला में साहित्य/साहित्य में चित्रकला

डॉ. शोभना जोशी [1]

[1] सहप्राध्यापक "हिंदी" महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय किला भवन, इंदौर

मुख्य शब्द – चित्रकला, साहित्य

Cite This Article: डॉ. शोभना जोशी. (2019). "चित्रकला में साहित्य/साहित्य में चित्रकला." *International Journal of Research - Granthaalayah*, 7(11SE), 5-9. https://doi.org/ 10.5281/zenodo.3584994.

सृष्टि चित्रलिखित सी है, चलचित्र भी है। "ये कौन चित्रकार है"! पता नहीं! पर सृष्टि का एक क्षुद्र हिस्सा भर मनुष्य इन चित्रों-चलचित्रों के बीच ही जनमता है, काल-कवलित होता है। सांसों के आने-जाने और रूक जाने की अवधि में इन चलचित्रों को देखता है। यह जो वह देखता है, उसकी आँखों के कैमरे से गुजरकर दिल-दिमाग में छपता है। उसे बैचेनी होती है। उस छपे को साझा करूँ। इस साझा करने की बैचेनी से जनमी चित्रलिपि। लिपि की बेल फैली, चित्र रचे चितेरों ने, रंग अविष्कृत हुए। मानस उर्वर हुआ, कल्पना से कला समृद्ध हुई। आदिम बर्बरता से आगे बढ़े मनुष्य के भावों से कला को स्पन्दन मिला। सृष्टि के समानांतर दृष्टि के अपरिमित सौंदर्य ने प्रभविष्णुता के साथ नृत्य कला, गायन कला को मूर्त किया। वाद्य अविष्कृत हुए। प्रकृति की प्रतिकृति ध्वनि रूप पा गयी तो मिट्टी और पत्थर से ठोस आकार "मूर्तिकला" रूप में मिला।

दूसरी ओर चित्रलिपि से लिपियाँ अविष्कृत होती गईं। सृष्टि के - प्रकृति के रहस्यमय सौंदर्य को; बाह्य संसार से मनुष्य के संबंधों से उपजे अंतर के भावों को; लिपि के आकार में कल्पना की कूची से रचनाकार ने "शब्द-शब्द" से रचा।

इन कलाओं और साहित्य ने प्रकृति के अंश-अंश को जिया और रसमय कर पुनः रचा। इनके अंतर्सम्बन्धों की गहरी और विस्तृत व्याखया "विष्णुधर्मोत्तर पुराण"[1] के खण्ड तीन के अध्याय दो में है। जहाँ मार्कण्डेय ऋषि से उनका शिष्य वज्र "कलाओं" के संबंध में जिज्ञासा प्रकट करता है -
वज्र- हे अनघ! मुझे देवता - रूप निर्माण अर्थात देव-प्रतिमा की रचना विधि बताइये, जिससे शास्त्रोक्त रीति से रचित प्रतिमा सदा देवता के स्वरूप को प्रकट कर सके॥1॥
मार्कण्डेय- हे नराधिप! जो चित्रविद्या के नियमों को भली-भांति नहीं जानता, वह मूर्त्तिकला के नियमों को कभी नहीं समझ सकता॥2॥
वज्र- हे भृगुवंश-विवर्धन कृपया मुझे चित्रकला के नियम समझाइये क्योंकि चित्रसूत्र का ज्ञाता ही मूर्तिविद्या को जानता है॥3॥
मार्कण्डेय- नृत्य विद्या के ज्ञान के बिना चित्रकला के नियमों को समझना अत्यंत कठिन है क्योंकि दोनों में जगत् का अनुकरण अथवा चित्रण रहता है॥4॥

वज्र- हे द्विज! तो पहले आप नृत्यशास्त्र का विवेचन कीजिये और फिर चित्रविद्या का क्योंकि नृत्यशास्त्र वेत्ता, चित्रविद्या का ज्ञाता होता है॥5॥
मार्कण्डेय- जो वाद्य संगीत से अपरिचित है उसके लिए नृत्यशास्त्र का ज्ञान अत्यंत कठिन है क्योंकि वाद्यसंगीत के ज्ञान के बिना किसी प्रकार नृत्यविद्या का ज्ञान संभव नहीं है॥6॥
वज्र- तो हे धर्मज्ञ! पहले वाद्य संगीत-विद्या का ही विवेचन कर फिर नृत्यकला का विवेचन करें क्योंकि हे भार्गव श्रेष्ठ! उसका मर्मज्ञ नृत्य विद्या को जानता है॥7॥
मार्कण्डेय - किंतु हे अच्युत! वाद्य संगीत का ज्ञान गीतविद्या के बिना शक्य नहीं है। गीतशास्त्र के मर्मज्ञ को सभी कलाओं का विधिवत् ज्ञान होता है॥8॥
वज्र- तब हे धर्मश्रेष्ठ! गीतशास्त्र का व्याख्यान ही कीजिये क्योंकि गीतशास्त्र का ज्ञाता सर्वगुण संपन्न पुरूष सभी कलाओं का ज्ञाता होता है॥9॥
मार्कण्डेय- गीत के दो भेद हैं - संस्कृत और प्राकृत। तीसरा भेद है अपभ्रंश, जिसके हे राजन्! अनंत भेद होते हैं॥10॥

देश भाषाओं पर आधृत होने के कारण उसके भेदों का कोई अंत नहीं। गीत, पाठ पर अर्थात् काव्य पर आश्रित होता है और पाठ काव्य के दो भेद माने गये हैं - गद्य और पद्य ॥11॥

गद्य का माध्यम बोलचाल या व्यवहार की भाषा होती है और पद्य का माध्यम है छंद जिसके अनेक भेद हैं।

इस वार्त्तालाप में मूर्त्तिकला, चित्रकला, नृत्यकला, वाद्य संगीत कला, गीत विद्या को अंतर्सम्बधित ही नहीं अंतः-संगुम्फित भी किया है। अन्त में गीत विद्या में संस्कृत, प्राकृत को सम्मिलित कर नागर अभिजात् और नागर साधारण को अंतर्सम्बधित किया है। फिर अपभ्रंश को लेकर उसके अनंत भेदों की चर्चा कर संपूर्ण "लोक" को सम्बद्ध कर दिया है, फिर गद्य-पद्य भेद के साथ छंद को जोड़कर समस्त रचनात्मक साहित्य को (नागरी, अभिजात्, नागरी साधारण, ग्राम्य, शास्त्रीय लोक) और काव्यशास्त्र को अन्य कलाओं से सम्बद्ध किया है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण की इस चर्चा के आधार पर एक क्रम उभरता है '

मूर्त्तिकला
↑
चित्रकला
↑
नृत्यकला
↑
वाद्य संगीत कला
↑
(शास्त्रीय-नागर, लोक-नागर,
ग्राम्य-लोक-अभिजात्)
तथा
छन्दशास्त्र या काव्यशास्त्र

इस परिप्रेक्ष्य में हिंदी के प्रसिद्ध आलोचनाशास्त्री डॉ. नगेन्द्र का वक्तव्य इस क्रम को तो बताता ही है पर इन्हें उर्ध्व या सतह के क्रम से बाहर कर एक वलय में स्थित करता है - "काव्य का संबंध संगीत, चित्र आदि कलाओं से इतना घनिष्ठ है कि इनकी प्रायः एक ही जाति मानना समीचीन होगा। काव्य में मनस्तत्त्व अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक है और मूर्त्त आधार प्रायः नगण्य इसलिए उसकी जाति उच्चतर मानने में तो कोई विकल्प ही नहीं है। किंतु जाति पृथक् नहीं है।"[2]

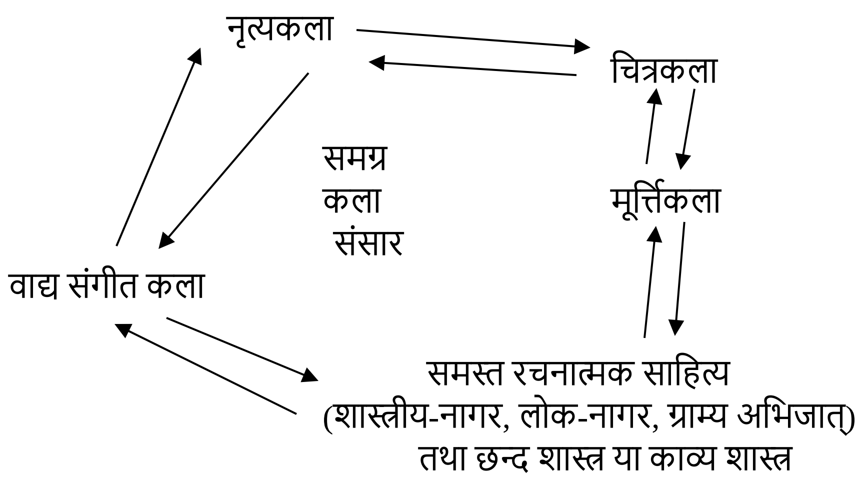

डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा - रुप के तीन रुप मानते हैं और लिखते हैं" 'रुप' का तीसरा रुप "प्रतीक" है। प्रतीक अपने रुप द्वारा अपने से भिन्न किसी सूक्ष्म अनुभूति को व्यक्त करता है - जैसे 'कमल' निष्पाप जीवन का प्रतीक है।"[3] चित्रकला में भावाभिव्यक्ति जितनी सघन और तीव्र होती है, मूर्त्त उपकरणों की प्रयुक्ति नगण्य होकर धुंधली होती जाती है। अमूर्त्त प्रतीकों का आश्रय वहाँ चित्रकला लेती है पर साहित्य में तो अभिव्यक्ति के अनिवार्य आधारभूत साधन -"सार्थक शब्द" ही किसी भाव या विचार का प्रतीक होते हैं। ये सार्थक शब्द स्मृतिकोष की स्थायी निधि हो जाते हैं। वाचिक एवं लिखित रूप में सहृदय पाठक श्रोता पुनः-पुनः इनसे, इनके मूल रूप से जुड़ जाता है।

डॉ. हरिशंकर मिश्र लिखते हैं - "साहित्य में रसानुभूति इसलिए होती है कि वह (पाठक) इसे स्मृति में रख सकता है। बार-बार नयी व्याख्याओं से रूबरू होता है। चित्रकृति को वह बार-बार रूबरू उसी रूप में स्मृत नहीं रख सकता"[4] इस दृष्टि से साहित्य में रसानुभूति और चित्रकला में सौन्दर्यानुभूति का विभेद भी किया गया।

रामदहिन मिश्र लिखते हैं - "अन्यान्य कलाओं से हममें रसानुभूति नहीं बल्कि सौंदर्यानुभूति होती है। सौंदर्यानुभूति हमें मुग्ध कर सकती है पर उसका कोई स्थायी प्रभाव हमारे हृदय पर नहीं होता क्योंकि भाव तन्मयता की शक्ति उसमें नहीं होती। काव्य की जो शक्ति अपनी अभिव्यक्ति से हमें आकर्षित और अधिक काल के लिए प्रभावित करती है वह उसकी भाव विदग्धता या रसानुभूति है।"[5]

डॉ. रामानंद तिवारी भी लिखते हैं "भाव संपत्ति के स्थायित्व और उपादानों की सहजता के कारण काव्य, कला का श्रेष्ठ रूप है। काव्य की यह श्रेष्ठता उसके माध्यम के कारण है।"[6] इन कथनों से साहित्य बेहतर और चित्रकला कमतर सिद्ध की गई है - रस और सौंदर्य के आधार पर, पर क्या रस और सौंदर्य दो भिन्न तत्व है! सौंदर्य का तात्पर्य विशद् है। सौंदर्य की विशद् अवधारणा के कारण ही तो नवरस में वीभत्स भी है। अजन्ता के सुंदर चित्र बौद्ध कथाओं के रस से सिक्त नहीं करते क्या? कृष्ण-कथा के चित्र नवरस का आस्वाद कराते हैं।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3584994

यह संभव है कि चित्रकला से हमेशा रसास्वादन न हो पर क्या रचे गये समस्त काव्य से रसानुभूति होती है अथवा सारा काव्य स्मृतिकोष में संचित होता है?

दूसरी ओर कई चित्र सहृदय दर्शक के मानस पटल पर अंकित होकर उसके भाव संसार का, अनुभूतियों का स्थायी अंश हो जाते हैं, यह ठीक है कि वह उस चित्र को अंकित नहीं कर सकता जबकि साहित्य को उसके शब्दों को लिख-बोल सकता है। पर जब एक उत्कृष्ट चित्र रचना की स्मृति, रसास्वादन हुआ था इसलिए हो आती है तब पुनः उस रस की अनुभूति सहृदय करता है। जैसे किसी श्रेष्ठ नृत्य प्रस्तुति का स्मरण कर, श्रेष्ठ गायन का स्मरण कर आनंद होता है, रसानुभूति होती है ठीक वैसे ही। मात्र रंगों का संयोजन चित्र नहीं होता न ही शब्दों का तुकबंदी संयोजन या विवरण भर साहित्य होता है। सौंदर्य और रस के सान्द्र विलयन से ही कला उत्कृष्ट होती है और वहाँ अर्थ और भाव की व्याप्ति होती है। सौंदर्य तत्व की अभिव्यक्ति हर कला में है। सौंदर्य का मूर्त्तरूप ही काव्य एवं समस्त कलाऐं है और रसानुभूति इन कलाओं की आत्मा।

चित्रों का लिप्यंतरण ही तो काव्य में - कविता, कहानी, निबंध, रेखाचित्र, रिपोतार्ज अन्यान्य साहित्य विधाओं में होता है। चित्रकला और साहित्य का जनमना रिशता है। प्रकृति और मनुष्य को उकेरती साहित्य रचनाएँ दृष्टि के समक्ष चित्र खड़ा कर देती हैं - कामायनी के प्रकृति चित्रण, निराला के बादल राग, संध्या सुंदरी, जुही की कली अमूर्त्त को मूर्त्त करती काव्य रचनाएँ हैं तो प्रसाद का 'गुण्डा' पूरी आकृति के साथ नज़र आता है। इसी तरह चित्रों में रमते हुए मन कहानी गढ़ने लगता है, उमड़ते-घुमड़ते भावों - विचारों के साथ, भले चित्र अमूर्त्त हो। चित्र और साहित्य का यह रिशता अटूट है और जब यह रिशता टूटता है तो इन कलाओं का प्राण तत्त्व भी घटता है। अमूर्त चित्रों में भी मूर्त्त भाव और विचार लयमान रहते हैं तो मूर्त्त शब्दों में अमूर्त्त यथार्थ।

चित्रकला एवं साहित्य ही नहीं सभी कलाओं की अंतर्सम्बद्धता को गहन संवेदनशील चित्रकार हकुशाह ने बहुत सहजता से समझा और स्वीकारा है। वे लिखते हैं - "संगीत, नृत्य, नाट्य, साहित्य को मैं दृशयकला से अलग नहीं कर सकता।" मुझे लगता है विभिन्न कला रूपों को परस्पर अन्तर्सम्बंधित करने पर मेरा काम ज्यादा समृद्ध व ज्यादा सघन होता है।"

यही नहीं वे कविता और चित्रकला के प्रगाढ़ सम्बन्धों को भी पहचानते हैं और पहचान देते भी हैं - "मैं अपने चित्र को एक कविता का आधार देता हूँ। यह अपने में एक लंबी यात्रा है। बरसों तक एक कविता मेरे साथ रहती है और इसकी आत्मा, इनके करीब पहुँचने के लिए कई बार अपने लिए इनका अनुवाद भी करता हूँ, कभी रेखांकन भी बनाता हूँ।"[7]

शब्द माध्यम से साहित्य में रचे गये प्राकृतिक दृशय, रंगों में दृद्गयमान प्राकृतिक रूप, कोई भी सच्चा कला प्रेमी इन दोनों का समान रसास्वादन करेगा।

सूक्ष्म संवेदनाओं को बारीकी से बुनने वाली कवि अपर्णा अनेकवर्णा जब लिखती हैं "वो दो थे / एक पक्षी / दूसरी छाया। तो उनके "मात्र सात शब्द" एक विराट् चित्र रच देते हैं, जहाँ द्वैत-अद्वैत की अद्‌भुत व्याखया है। स्त्री-पुरूष की प्रगाढ़ आदिम संगति का चित्र वहाँ है, तो सृष्टि रचयिता और मनुष्य के संबंधों की आध्यात्मिक व्याख्या भी इस काव्य-चित्र में अनुनाद करती है।

Tobeen (ps. Felix Elie Bonnet, 1880-1938) - La Nageuse (The Swimmer) - s.d.

तो दूसरी ओर "तैरती महिला के इस चित्र को देखते ही अद्वैत भाव की रचना दिल-दिमाग में कौंध जाती है। "जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।

फूटा कुंभ जल, जल ही समाना यह तत कथा गियानी॥ - कबीर

इस चित्र में यदि चेहरे पर अद्भुत शांति के भाव न होते, हाथ की वह उठी मुद्रा न होती, बालों को बांधता श्वेत आवरण न होता तो इस तरह की रचना मन में उमड़ती नहीं।

भारतीय मनीषा ने सन् 600 ईस्वी में ही (विष्णुधर्मोत्तर पुराण) कलाओं के इन अन्तर्सम्बन्धों को पहचाना-विवेचित किया था। इस संसार में धूल का एक कण भी स्वायत्त नही, तब संवेदनाओं से जनमी कलाओं और साहित्य का अन्तर्सम्बन्ध होना सहज प्राकृतिक सत्य है। इन कलाओं में नित्य नूतनता, रसानुभूति की अनंत संभावनाएँ इन अंतर्सम्बन्धों के कारण ही है।

संदर्भ-

[1] विष्णुधर्मोत्तरपुराण, खण्ड-तीन, अध्याय - 2
[2] भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 82
[3] सौंदर्यशास्त्र डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा, पृ. 69-70
[4] सौंदर्यशास्त्र स्वरूप और संभावनाएँ, डॉ. हरिशंकर मिश्र, पृ. 78
[5] काव्यदर्पण - रामदहिन मिश्र, पृ. 122-123
[6] मध्यकालीन भारतीय कलाएँ और उनका विकास - डॉ. रामानंद तिवारी, पृ. 910
[7] मानुष - हकुशाह, VIII, 128, 171